



Date:22-12-22

Benchmarks for ECs' appointments

Monopolisation of the positions of ECs and Chief Election Commissioner (CEC) by the administrative services is too obvious these days

Jagdeep S. Chhokar is the Co-founder of election Watchdog Association for DEMocratic Reforms (ADR), which is a petitioner in the case in the supreme court

The way India's constitutional and political structures have evolved over the years seems to have made elections almost a mechanistic and ritualistic exercise. The reason behind this is the setting up and functioning of the Election Commission of India (ECI). This has come into public discourse because of the hearings in the Supreme Court on the appointment of Election Commissioners (ECs).

While many issues related with the ECI have been discussed in court hearings and outside, a deeper look at the ECI may be useful, given its role in the preservation of democracy in the country.

Working of the Constitution

Article 324 of the Constitution is the fountainhead that creates the ECI. This brings to mind the larger issue of the working of the Constitution. For this, it is worth recalling what two stalwarts of Constitution-making (the President of the Constituent Assembly (CA) and the Chairman of the Drafting Committee for the Constitution) said in their final speeches in the CA when the Constitution was finally adopted.

While commending the adoption of the Constitution to the CA on November 25, 1949, Dr. B.R. Ambedkar said, "However good a Constitution may be, it is sure to turn out bad because those who are called to work it, happen to be a bad lot. However bad a Constitution may be, it may turn out to be good if those who are called to work it, happen to be a good lot. The working of a Constitution does not depend wholly upon the nature of the Constitution."

The next day, on November 26, 1949, almost echoing Dr. Ambedkar's words, Dr. Rajendra Prasad said, "Whatever the Constitution may or may not provide, the welfare of the country will depend upon the way in which the country is administered. That will depend upon the men who administer it... If the people who are elected are capable and men of character and integrity, they would be able to make the best even of a defective Constitution. If they are lacking in these, the Constitution cannot help the country. After all, a Constitution, like a machine, is a lifeless thing. It acquires life because of the men who control it and operate it, and India needs today nothing more than a set of honest men who will have the interest of the country before them."

If we take the above-mentioned views of the two luminaries as a guide for choosing who should be assigned the task of ensuring that the roots of democracy are kept appropriately watered and nourished, the answer is Election Commissioners (ECs).

All the arguments and proposals mentioned during the court hearings will, obviously, be an improvement over the existing system of appointment of ECs but if we want ECs to match the qualities stated by Dr. Ambedkar and Dr. Prasad, then we need to go beyond how Article 324 of the Constitution and the Election Commission (Conditions of Service of Election Commissioners and Transaction of Business) Act, 1991, have been operationalised so far.

Elevation of EC to CEC

One major weakness in the system(s) of appointments of the ECs proposed so far is that they all perpetuate the bureaucratisation of the ECI, which is not even hinted at in the Constitution anywhere. Two visible manifestations of this are the so-called elevation of ECs to Chief Election Commissioner (CEC), and the tenures of ECs and CEC. The elevation is a clear violation of the principle of *primus inter pares*. Monopolisation of the positions of ECs and CEC by the administrative services is too obvious to need highlighting.

So, how do we find persons who will come close to the expectation of Dr. Ambedkar and Dr. Prasad? For this, we need to go outside the existing frameworks. Marginal improvements are not going to be enough. Bold actions are called for.

For this, the following process is proposed. An existing committee of Parliament or a new committee formed for this purpose should propose the qualifications and requirements for persons to be appointed as ECs/CEC. The proposals of the committee should be put to Parliament and should be considered approved only if they are approved by two-thirds majority of the members of Parliament present and voting. Once the qualifications and requirements have been approved by Parliament, the same committee should be entrusted with the task of searching for and selecting individuals proposed to be appointed as ECs/CEC.

The committee should invite nominations and applications of individuals appropriate for or interested in being appointed as ECs/CEC.

The committee should send its recommendations to Parliament for consideration. Recommendations of the committee should be considered approved by Parliament only if approved by two-thirds majority of the members of Parliament present and voting. Once Parliament approves the recommendations, they should be sent to the President for approving the appointments. Once appointed, such persons should stay in their positions for six years or the age of 75 years, whichever is earlier. Persons above the age of 69 years should not be appointed.

Obviously, the above will be seen to be a very cumbersome process, particularly given that Parliament is more or less dysfunctional today. Nonetheless, if the democracy in its real sense is to be preserved in the country, the importance of the ECI has to be recognised and accepted.



दैनिक भास्कर

Date:22-12-22

कामकाजी आबादी बढ़ने का हमें लाभ नहीं मिलेगा

नीरज कौशल, (कोलंबिया यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर)

भारत के डेमोग्राफिक डिविडेंड (जनसांख्यिकीय लाभ) के बारे में बहुत बातें की जाती हैं, लेकिन क्या वह वास्तविक है? एक तुलनात्मक परीक्षण करते हैं। बीते दशक में भारत की आबादी 16 करोड़ बढ़ी है। इसकी तुलना में चीन की आबादी इससे आधी ही यानी 8 करोड़ बढ़ी है। कई विश्लेषकों का मत है कि जनसंख्या-वृद्धि से भारत को लाभ हुआ है, क्योंकि बीते दशक में जन्मे लाखों लोग जल्द ही कार्यक्षम आबादी का हिस्सा बन जाएंगे और फिर रिटायर होने तक अपने आर्थिक योगदानों से देश की इकोनॉमी को लाभ पहुंचाते रहेंगे। इन मायनों में देखें तो भारत को चीन की तुलना में दोगुना जनसांख्यिकीय लाभ मिलना चाहिए, ठीक?

हम्म... नहीं तो। कारण, चीन की तुलना में भारत का प्रति व्यक्ति लाभांश बहुत कम है। इसकी दो वजहें हैं : एक, चीनियों की तुलना में एक औसत भारतीय कम काम करता है। चीन के 68 प्रतिशत की तुलना में भारत का श्रमशक्ति योगदान 45 प्रतिशत ही है। इसका यह मतलब है कि बीते एक दशक में जन्मे 16 करोड़ भारतीयों में से 7.2 करोड़ ही कार्यशक्ति का हिस्सा बनेंगे, वहीं चीन में पिछले एक दशक में जन्मे 8 करोड़ लोगों में से 5.4 करोड़ कामगारों का हिस्सा बनेंगे। यानी जहां भारत में चीन की तुलना में 8 करोड़ अधिक लोग जन्मे हैं, वहीं उसकी कार्यशक्ति में चीन की तुलना में केवल 1.8 करोड़ ही अधिक लोगों का इजाफा होगा।

दूसरा कारण है, कामगारों की कार्यकुशलता। इसका पैमाना है शिक्षा। इस क्षेत्र में चीन हमसे कहीं बेहतर स्थिति में है। 15 प्रतिशत चीनियों के पास कॉलेज डिग्री है, जबकि भारत में यह 11 प्रतिशत के ही पास है। यकीनन, ये तमाम आंकड़े भर ही हैं। लेकिन पॉइंट यह है कि अगर हमने अपनी कार्यशक्ति सहभागिता दर नहीं बढ़ाई और कामगारों की स्किल्स को नहीं सुधारा तो चाहे जितना डेमोग्राफिक डिविडेंड हो, उससे हमें ज्यादा लाभ नहीं मिलने वाला है। अर्थशास्त्री प्रणब सेन के शब्दों में भारत के कार्यशक्ति सहभागिता के आंकड़े हताश कर देने वाले हैं। वे न केवल कम हैं, बल्कि और गिर रहे हैं।

इसका एक बड़ा कारण है भारतीय महिलाओं की श्रमशक्ति में कम सहभागिता। आलोचकों का मत है कि भारत जैसे समाज में, जहां महिलाएं घर के कामकाज में केंद्रीय भूमिका निभाती हैं और घर की देखभाल में उनका योगदान सबसे अहम होता है, वहां इस नॉन-मार्केट काम को भी एक रोजगार की श्रेणी में रखा जाना चाहिए और इसकी वैल्यू को देश की जीडीपी में जोड़ना चाहिए। इस तर्क को काटना कठिन होगा। मिसाल के तौर पर, अगर कोई स्त्री वही काम किसी और के घर में करती तो उसे इसका वेतन दिया जाता और यह राष्ट्रीय जीडीपी में जोड़ा जाता। यह तर्क केवल रोजमर्रा के कामकाज तक ही सीमित नहीं है। अगर आप खुद ही अपने टैक्स रिटर्न पर काम कर रहे हैं तो यह जीडीपी में नहीं जुड़ेगा, लेकिन अगर कोई अकाउंटेंट आपके लिए यह काम करता है तो यह जीडीपी में गिना जाएगा। लेकिन अधिकतर

मामलों में इस तरह की गतिविधियों का मूल्यांकन करना दूभर होता है। क्योंकि अगर आप या आपकी मेड बहुत अच्छा खाना नहीं बना पाते या साफ-सफाई अच्छे-से नहीं करते तो दोनों के कामों को समान मानना एक अच्छा विश्लेषण नहीं कहलाएगा।

बात केवल मूल्यांकन की ही नहीं, पसंद और प्रेरणा की भी है। जिन समाजों में पेड-वर्क में महिलाओं की सहभागिता एक आम चलन है, वहां उनके पास अपनी क्षमताओं के अनुरूप काम चुनने की आजादी भी होती है। साथ ही, वे जो काम करना चाहती हैं, उसके लिए स्किल्स का विकास भी कर सकती हैं। घर के कामकाज कोई प्रोफेशन नहीं है, इसलिए उसमें प्रोफेशनल ग्रोथ नहीं होती। साथ ही किसी बुजुर्ग सदस्य या दिव्यांग बच्चे की देखभाल करने जैसे चुनौतीपूर्ण कार्यों की भी वहां परख नहीं होती है, जबकि अगर यही काम किसी कार्यस्थल पर किया जाए तो न केवल इसमें पेशेवर विकास होगा, बल्कि वेतन भी ऊंचा मिलेगा। घर के काम में कोई पेंशन नहीं मिलती, सामाजिक सुरक्षा नहीं होती, न ही जॉब मोबिलिटी होती है। घर के कामकाज में दक्षता हासिल करने से भी आय नहीं बढ़ती है। तो हम फिर से अपने मूलभूत प्रश्न पर लौटें कि क्या भारत का डेमोग्राफिक डिविडेंड वास्तविक है? है तो, लेकिन कृपया उसे अधिक न आंकें। अगर हमने अपनी कार्यशक्ति सहभागिता दर नहीं बढ़ाई और कामगारों की स्किल्स को नहीं सुधारा तो चाहे जितना डेमोग्राफिक डिविडेंड हो, उससे हमें ज्यादा फायदा नहीं मिलने वाला है।



Date:22-12-22

खुदकुशी की कड़ियां

संपादकीय

जब किसी वजह से हर तरफ कोई व्यापक त्रासदी हावी दिखने लगती है तब उसकी सबसे ज्यादा मार समाज के कमजोर तबकों पर पड़ती है। करीब तीन साल पहले जब कोरोना ने दस्तक दी थी, तब शुरुआती दौर में यह लगा था कि संकट जल्द ही टल जाएगा। लेकिन महामारी से बचाव के उपायों के तहत लगाई गई पूर्णबंदी जितने वक्त तक लंबी खिंच गई और बाद में भी हालात पूरी तरह सामान्य नहीं हुए, उसका कितना असर देश और समाज पर हुआ, वह छिपा नहीं है। इस बीच ऐसी खबरें सुर्खियों में नहीं आ सकीं, जिसमें हाशिए के लोगों को कई तरह की त्रासदी से जूझना पड़ा और उसका असर आज भी उनके परिवारों पर कायम है। मसलन, सिर्फ पिछले साल यानी 2021 में देश में रोजाना औसतन एक सौ पंद्रह दिहाड़ी मजदूरों और तिरसठ गृहिणियों ने आत्महत्या की। मंगलवार को सरकार ने लोकसभा में बताया कि राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के मुताबिक, पिछले साल देश भर में कुल एक लाख चौंसठ हजार तैंतीस लोगों ने खुदकुशी की। साथ ही तेईस हजार एक सौ उनासी गृहिणियों और पंद्रह हजार आठ सौ सत्तर पेशेवर लोगों के अलावा कई अन्य वर्गों के सैकड़ों लोगों ने अलग-अलग कारणों से अपनी जान दे दी।

जाहिर है, महामारी की मार ने केवल सेहत के मोर्चे पर लोगों के सामने जानलेवा हालात नहीं पैदा किए, बल्कि उससे बचाव के लिए जो तरीके अपनाए गए, उसके असर ने करोड़ों लोगों की जिंदगी को मुश्किल में डाल दिया। पूर्णबंदी की

वजह से जब हर तरफ सब कुछ ठप पड़ गया था, तब महज जिंदा रह पाने के लिए रोजाना की मजदूरी पर निर्भर लोगों की लाचारी ने उन्हें अमानवीय परिस्थितियों में झोंकने के साथ-साथ ऐसे हालात भी पैदा किए, जिसमें बहुत सारे लोगों को पेट भरने तक के लिए खर्च और अनाज जुटाना भारी पड़ने लगा। सब कुछ बंद होने की वजह से हर तरफ काम-धंधे खत्म थे और दिहाड़ी करके गुजारा करने वालों को कोई रोजगार नहीं मिल रहा था। यानी जो लोग कोरोना विषाणु से संक्रमित होकर भी या फिर उसकी जद में आने से बच गए, उनके सामने जीवन चलाने और बचाने तक की चुनौती मुंह बाए खड़ी थी, क्योंकि रोजगार का कोई जरिया आसान नहीं रह गया था। यहां तक कि कर्ज या उधार लेकर काम चलाने के हालात भी मुश्किल हो गए। ऐसी त्रासदी में कमजोर पड़ कर बहुत सारे लोग टूट गए और कोई विकल्प न पाकर कड़ियों ने खुदकुशी का रास्ता अख्तियार कर लिया।

यह स्थिति केवल मजदूर तबकों तक सीमित नहीं थी, बल्कि हर तरफ छाई नकारात्मक घटनाओं के असर ने व्यवसाय जगत से लेकर अन्य क्षेत्रों को भी बुरी तरह प्रभावित किया। इसमें संदेह नहीं कि विकट परिस्थितियों में सरकार ने मुफ्त अनाज से लेकर कई स्तर पर सहायता मुहैया कराने का दावा किया। लेकिन जरूरत के मुकाबले मदद की सीमा एक व्यापक त्रासदी में फंसे बहुत सारे लोगों की जान बचा पाने में कारगर साबित नहीं हुई। अभाव और उससे जुड़ी कड़ियों ने आम लोगों के सामने जिस तरह के मानसिक संघर्ष के हालात पैदा किए, उसके दबाव और उसकी पीड़ा को झेल पाना सबके लिए संभव नहीं हुआ। जाहिर है, अब सरकार अगर लोगों की जिंदगी बचाने के नाम पर कोई बड़ा कदम उठाती है तो उसे ध्यान रखना चाहिए कि कहीं उनसे जुड़ी कड़ियों से ही लोगों के सामने जान देने की लाचारगी न पैदा हो। उन वजहों और नीतियों पर भी गौर करने की जरूरत है जिसके असर से पिछले सात सालों में दिहाड़ी मजदूरों की खुदकुशी की संख्या में करीब तीन गुना की बढ़ोतरी हो गई है।

राष्ट्रीय सहारा

Date:22-12-22

रूखे-सूखे से पोषण

संपादकीय



संसद में मंगलवार को कृषि मंत्रालय ने 'विशेष मिलेट्स लंच' का आयोजन किया। इसमें उपराष्ट्रपति जगदीप धनखड़, प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी, लोक सभा अध्यक्ष ओम बिरला समेत सभी दलों के सांसदों ने मोटे अनाज से तैयार लजीज व्यंजनों का स्वाद लिया। बाजरा से बनी खिचड़ी, रागी डोसा, रागी रोटी, ज्वार की रोटी, हल्दी की सब्जी, बाजरा खीर, बाजरा केक और चूरमा आदि व्यंजनों में शामिल थे। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 2023 को अंतरराष्ट्रीय बाजरा (मिलेट्स) वर्ष घोषित किया है।

इसी के स्वागत में संसद में कृषि मंत्रालय ने विशेष मिलेट्स लंच की मेजबानी की। गौरतलब है कि भारत ने स्वस्थ

विश्व की परिकल्पना के तहत संयुक्त राष्ट्र से मोटा अनाज वर्ष घोषित करने की अपील की थी। भारत का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। दुनिया में पोषक अनाज का चलन बढ़ा तो पक्की बात है कि न सिर्फ लोगों के स्वास्थ्य पर अनुकूल असर पड़ेगा, बल्कि इसका लाभ भारत के उन लाखों किसानों को मिलेगा जो कम सिंचित क्षेत्रों में खेती करते हैं। बारिश ज्यादा न होने के कारण जलाभाव वाले क्षेत्रों में किसान मोटे अनाज की पैदावार ही ले पाते हैं। लोगों के खानपान में मोटे अनाज का शुमार नहीं होने कारण इन खाद्यान्नों की मांग ज्यादा नहीं रहती। ज्यादातर अनाज का इस्तेमाल पशु आहार में किया जाता है, और किसान को उसकी उपज का लाभकारी दाम मिलना तक मुश्किल हो जाता है। अच्छी बात है कि अब मोटे अनाजों को खानपान में शामिल करने के लिए इतने बड़े स्तर पर प्रयास हो रहे हैं। जरूरी है कि इस बाबत जनांदोलन चलाया जाए जिसका जिक्र प्रधानमंत्री मोदी ने भी किया है। उन्होंने कहा है कि जी -20 की विभिन्न बैठकों में आने वाले अतिथियों भोज में कम से कम एक व्यंजन मोटे अनाज का होना चाहिए। आंगनवाड़ी, स्कूलों के साथ अन्य सरकारी बैठकों के मैन्यू में मोटे अनाज से तैयार व्यंजन शामिल करने की बात भी कही है। भारत में मोटे अनाज को प्रचलन में लाने के लिए प्रयास कोई हाल-फिलहाल में शुरू नहीं हुए हैं। भारत सरकार ने अप्रैल, 2018 में बाजरा को पोषक अनाज के रूप में अधिसूचित किया था। इसके तहत पोषण मिशन अभियान में बाजरा को भी शामिल कर लिया गया। मोटे अनाज में बाजरा प्रमुख फसल है। बहरहाल, मोटे अनाज को जिस तरह प्रचलन में लाने की कोशिश की जा रही है, उसके दूरगामी लाभ मिलना निश्चित है।

Date:22-12-22

जैव विविधता पर मंडराता खतरा

अनिरुद्ध गौड़



"जलवायु परिवर्तन और मानवीय गतिविधियों के कारण पूरे विश्व में विविधता खतरे में है। कनाडा के मॉन्ट्रियल शहर में 7 से 19 दिसम्बर तक आयोजित हुई कॉप 15 बायोडायवर्सिटी कॉन्फ्रेंस में संयुक्त राष्ट्र महासचिव एंटीनियो गुटेरेस सहित तमाम प्रतिनिधि देशों ने असंतुलित वैश्विक जैव विविधता पर चिंता व्यक्त की। करीब 196 देशों के प्रतिनिधियों को संयुक्त राष्ट्र ने कॉन्फ्रेंस ऑफ दी पार्टीज टू दी कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डायवर्सिटी टू (कॉप) घोषित किया है। 1994 से 1996 तक कॉप की सालाना बैठक होती रहीं। 2000 में आयोजन के

नियम में संशोधन हुआ और यह बैठक प्रत्येक दो वर्ष में होने लगी।

कॉप-15 चीन के कुनिमिंग और कनाडा के मॉन्ट्रियल में दो फेज में संपन्न हुई। इसमें 188 देशों के प्रतिनिधियों, अमेरिका सहित द वेटिकन ने जापान के आईची शहर में हुई कॉप की 11वीं बैठक (आईची-11) के लक्ष्यों की समीक्षा करते हुए कॉप-15 में वैश्विक जैव विविधता के संरक्षण के 23 लक्ष्य और 4 उद्देश्य को निर्धारित किया है। ऐतिहासिक समझौते पर सहमति बनना पृथ्वी की प्रकृति के लिए मील का पत्थर साबित होगा बशर्ते सभी देश कॉप-15 में निर्धारित लक्ष्यों

और उद्देश्यों के करीब पहुंचते हैं। वैश्विक जैव विविधता के मुद्दे पर पीछे मुड़कर देखें तो संयुक्त राष्ट्र के वैश्विक मंच पर 1992 में रियो डी जेनेरियो में संपन्न अर्थ सम्मिट में वैश्विक जैव विविधता संरक्षण पर पहली बार चिंता जताई गई। फिर दिसम्बर, 1993 में कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डायवर्सिटी (सीबीडी) की अंतरराष्ट्रीय संधि पर विश्व के प्रतिनिधि देशों ने हस्ताक्षर कर इसे लागू किया। विश्व स्तर पर जारी आकलन रिपोर्ट में पशु और पौधों की लाखों प्रजातियां विलुप्त होने की कगार पर हैं, जिसके पीछे इंसानी महत्वाकांक्षा है। हालांकि कॉप-15 में 2030 तक प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और सुरक्षा से जुड़े उपायों में 30 प्रतिशत भूमि, तटीय इलाकों और अंतर्देशीय जलक्षेत्र के संरक्षण लक्षित हैं।

महत्वपूर्ण है कि वैश्विक जैव विविधता पर मंडराते खतरे से निपटने के लिए 2010 में आइची-11 में लगभग 200 देशों ने 2020 तक अपने स्तरीय क्षेत्र में कम से कम 17 प्रतिशत जमीनी और 10 प्रतिशत समुद्री हिस्से को संरक्षित करने का संकल्प लिया था। लेकिन 2020 तक इस लक्ष्य तक विश्व के काफी देश नहीं पहुंच सके हैं। 15 इसलिए कॉप-15 में कुनिमंग- मॉन्ट्रियल ग्लोबल बायोडायवर्सिटी फ्रेमवर्क (जीबीएफ) 2030 के लक्ष्य अर्थात 30 फीसदी भूमि, समुद्र, तटीय इलाकों और अंतर्देशीय जलक्षेत्रको संरक्षण करना कॉप देशों के लिए बड़ी चुनौती है। आइची - 11 लक्ष्यों की समीक्षा करने पर पाया गया है कि भारत सहित दुनिया के काफी देश इस लक्ष्य तक पहुंचने में काफी दूर रहे हैं। भारत में 6 प्रतिशत संरक्षित क्षेत्र ही घोषित है और 2010 से पिछले दस वर्षों में भारत मात्र 0.1 प्रतिशत संरक्षित क्षेत्र ही बढ़ा पाया है। एशिया के अधिकतर देशों की कमोबेश ऐसी ही स्थिति है। भारत के आंकड़ों पर गौर करें तो देश के 1,73,306.83 वर्ग किमी. संरक्षित क्षेत्र में 990 संरक्षित क्षेत्रों का नेटवर्क है। इसमें 106 राष्ट्रीय उद्यान, 565 वन्य जीव अभ्यारण, 100 संरक्षण रिजर्व और 219 सामुदायिक रिजर्व शामिल हैं। हालांकि पिछले 10 वर्षों में 40 प्रतिशत एशियाई देश ने संरक्षित क्षेत्रों में 17 फीसदी हिस्से के लक्ष्य को हासिल किया है। इनमें भूटान, नेपाल, जापान, कतर, दक्षिण कोरिया जैसे देशों ने संरक्षित क्षेत्र बढ़ाने में महती कामयाबी पाई है।

जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र की सेवाओं का आकलन करने वाली अंतर सरकारी विज्ञान नीति मंच (आईपीबीईएस) की गत 6 मई, 2019 को जारी रिपोर्ट के मुताबिक जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र की विभिन्न सेवाएं खतरे में हैं। वैश्विक आकलन के मुताबिक 10 लाख पशुओं और वनस्पतियों की प्रजातियां विलुप्ति के कगार पर हैं। इनमें से हजारों एक दशक के भीतर ही विलुप्त हो जाएंगी। आईपीबीईएस अध्यक्ष रॉबर्ट वॉटसन की चिंता है कि तेजी से नष्ट हो रहे पारिस्थितिकी तंत्र पर सभी पूरी तरह से निर्भर है। हम पशु, खाद्य सुरक्षा और हमारी अर्थव्यवस्था की बुनियाद को नष्ट करते जा रहे हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में केवल 15 प्रतिशत पारिस्थितिकी तंत्र की बहाली से ही विलुप्ति का यह खतरा 60 प्रतिशत तक कम हो सकता है। गौरव की बात है कि संयुक्त राष्ट्र ने भारत की पवित्र गंगा नदी को फिर से जीवंत करने की पहल पर काम करने के लिए नमामि गंगे की सराहना करते हुए उसे प्राकृतिक जगत को पुनर्जीवित करने पर केंद्रित 10 अग्रणी प्रयासों में स्थान दिया है।

आईपीबीईएस की रिपोर्ट ने दुनिया को चिंतित तो कर दिया है लेकिन वैश्विक दृढ़ प्रतिज्ञा हमें इस संकट से उबार सकती है। ग्रह और मानवता को बचाने के लिए तत्काल एक साथ आना होगा। विकसित देशों के विकासशील और गरीब देशों को आर्थिक और तकनीकी सहयोग देकर वैश्विक बायोडायवर्सिटी असंतुलन के संकट से उबरने में आगे आकर बड़े सहयोग की आवश्यकता है। तभी 2030 तक 30 प्रतिशत भूमि और समुद्र के संरक्षण के लक्ष्य को पाने में आसानी होगी।